भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और दुष्यंत कुमार के साहित्य में नारी–मीमांसा

डॉ0 महिमा

असिस्टेंट प्रोफेसर हिन्दी,

एफ. सी. कॉलेज हिसार, हरियाणा

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल के कवि भारतेंदु हरिश्चन्द्र और दुष्यंत कुमार दोनों ही अपने–अपने समय के चमकते सितारे है। एक जहॉ नये युग के जनक और खड़ी बोली पक्षधर थे तो वही; दूसरे ग़ज़ल जैसी विधा में हिन्दी भाषा को पहचान दिलवाने वाले हिन्दी ग़ज़लों के मसीहा बनके उभरे। दोनों का ही साहित्य अधिक निर्भय, अधिक जिम्मेदार, अधिक स्पष्ट व अधिक मुखरित हुआ है। विशेषकर नारी की सामाजिक स्थिति पर इस काल–खंड में बहुत कुछ लीक से हट कर लिखा गया है। नारी संबंधी अनेक संवेदनशील पहलुओं को मानवीय धरातल पर पहली बार आधुनिक युग में उतारा गया है। समाज में सामाजिक पाखंड और आडंबर चरम सीमा पर थे। ये पाखंड और आडंबर भारतीय समाज में अनेक बुराइयों को जन्म दे रहे थे। नारी की सामाजिक प्रतिष्ठा में गिरावट बड़ी बुराई थी। जिस नारी के बारे में कहा जाता था कि जहाँ नारी की पूजा होती है, वहाँ देवता निवास करते हैं–**यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता**, ऐसे ही युग में नारी अब राजप्रासादों में उपभोग की वस्तु होकर रह गई थी। सामन्ती वर्ग में ही नहीं माध्यम तथा निम्न वर्ग में भी नारी की स्थिति कुछ अच्छी न थी। आजादी के बाद भी नारी की स्थिति में कोई अधिक बदलाव देचाने को नही मिला। दुष्यंत के समय नारी प्रत्येक क्षेत्र में पुरुष की दया व इच्छा पर निर्भर रहने वाली निरीह प्राणी हो गई थी। बाल विवाह, बाला– वृद्ध विवाह, बहु विवाह, परदा प्रथा, दहेज प्रथा, अशिक्षा आदि जितनी भी सामाजिक बुराइयाँ थीं, नारी उन सभी का केंद्र बिन्दु थी।

भारतेन्दू युग में सत्ता जागीरदारों या सामंतों के हाथ में आ जाने से निरंकुशता का वातावरण बन गया था। 'जिहि की बिटिया सुंदर देखी, तिहि पर जाय धरी तलवार' जैसे वातावरण में बिटिया को बचाने का एक ही तरीका था– बाल विवाह। इन्हीं बाल विवाहों के कारण स्त्रियाँ छोटी उम्र में ही विधवा होने लगीं। जब विधवा के पुनः विवाह करने पर धर्म ने रोक लगाई तो समाज में व्याभिचार फैलने लगा। वेश्यावृत्ति बढ़ने लगी। इसी सन्दर्भ में भारतेन्दु जी की पंक्तियां द्रष्टव्य हैं:–

'' करि कुलान के बहुत ब्याह बल–बीरज मार्यो ।
विधवा–ब्याह निषेध कियो विभिचार प्रचार्यो ।।'' [1]

नारी का व्याभिचारी स्वरूप रीतिकालीन परिवेश में हम नारी के भोग्या स्वरूप का ही दिग्दर्शन पाते हैं। इस युग के पश्चात आरंभ हुए भारतेंदु युग में भी नारी की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आया। वेश्यावृत्ति चरम सीमा पर थी। मान–मर्यादा, कुलीनता, सतीत्व जैसे शब्द शब्दकोशों में सिमट गए थे। भारतेंदु लिखते हैंरू स्त्री और बिजली जिससे छू गई, वह गया। गया भी ऐसा कि फिर न उभरेगा। विवाहिता होते हुए भी सुंदर स्त्रियाँ अपनी सुंदरता , चंचलता व मोहक हाव भावों से पुरुषों को अपनी ओर आकर्षित करती थी। इनके रूपजाल से निकल पाना पुरुषों के लिए बहुत मुश्किल हो जाता था। वेश्या, अशिक्षा, बाल विवाह, वैधव्य वृद्ध विवाह आदि कई कारणों से स्त्री का सामाजिक पतन बहुत तेजी से होता जा रहा था। इस पतन की अंतिम परिणति थी वेश्यावृत्ति। स्त्री के वेश्या स्वरूप को लेकर शासक, शासित, छोटे–बड़े, ऊँचे दृनीचे, किसी को भी कोई आपत्ति न थी। इन सामाजिक बुराइयों पर भारतेन्दु जी सटीक व्यंग्य करते हुए लिखते है–

सबैं एक से लोग लुगाई।।
वेश्या जोरू एक समाना।
बकरी गऊ एक करि जाना।। '' [2]

भारतेन्दू की भॉति दुष्यंत कुमार ने भी नारी को लेकर अपने साहित्य में प्रकाश डाला है। वैसे तो उन्होंने अपनी आरम्भिक रचनाओं में अन्य समकालीन कवियों की भॉति नारी प्रेम पर प्रकाश डाला है। स्वतन्त्रता से पूर्व भारत में नारी की दशा अत्यन्त दयनीय थी। समाज में उसका कोई महत्वपूर्ण स्थान सुरक्षित नहीं था। वह वासना की बिन्दू मानी जाती रही। एक दीर्घकाल से पति की इच्छा पर ही उसके जीवन की समग्रता निर्भर करती आई है। परिवार की मुक्ति कही जाने वाली नारी का परिवार में और न समाज ही में कोई पृथक अस्तित्व नहीं था। इनकी रचनाओं में प्रेम का सात्विक रूप प्रस्तुत हुआ है। इन्होनें अन्य कवियों की भांति मांसलता का प्रयोग नहीं किया। इनका प्रेम न तो घनानंद की तरह था जो सदैव शिकायत करता और न आज की युवा पीढ़ी जैसा। कवि ने सच्चे प्रेम की वकालत करते हुए मानते है कि आज का युवा प्रेम का सहारा लेकर काम–वासना को शान्त करता है। उन्होंने प्रेमी–प्रेमिका के वियोग भाव को बड़ी सजीवता से चित्रित किया करते हुए माना कि प्रेम ही जीवन में प्रकाश लाता है। सौन्दर्य का गर्व करने वाली नायिका को प्रेम की परिभाषा देते हुए लिखते है कि उनका सौन्दर्य क्षणभर के लिए है जो नश्वर है। –

''मतलब यह है कि प्रेम के तीन स्तर होते हैं। आध्यात्मिक, मानसिक, शारीरिक। आध्यात्मिक प्रेम में प्रेमी–प्रेमीका एक–दूसरे में ब्रह्म की छाया का आभास पाते है हुए एक–दूसरे की आराधना करते हैं। मानसिक प्रेम में प्रेमिका व प्रेमी पत्र व्यवहार करते हुए समाज के हाथों विवश हुए रहने पर भी उसके विधान को तोड़ने और विद्रोह के ख्याली पुलाव पकाया करते हैं। जबकि तीसरे शारीरिक प्रेम में साधारणतया

आपसी बातचीत, मिलना–जुलना, हंसना–रोना–गाना और परस्पर खत लिखना वगैरह भी शामिल रहता है।''[3]

त्यागी जी ने अपने साहित्य में पुरूष और स्त्री का मनोवैज्ञानिक चित्रण प्रस्तुत करते हुए कहते है कि पुरूष अपनी पिछली प्रेम–कहानी बताने में गर्व महसूस करता है। वह भोग–विलास में लीन होकर भी अपने आपको साफ छवि का मानता है। स्त्री को सबसे ज्यादा दुःख भी उसी समय होता है, जब वह अपने पति की किसी प्रेम–कहानी के बारे में जान जाती है; जबकि पुरूष को अपनी पत्नी की प्रेम कहानी का पता चलता है तो वह जल भूनकर कोयले की तरह हो जाता है। उन्होने अपने इस तर्क को 'एक अधुरी कवि–कथा' में महावीर नामक पात्र के मुख से कहलवाया–

''यह व्यक्तिगत स्वभाव पर निर्भर है। हो सकता है कोई पुरूष इसे बिल्कुल भी गंभीरता पूर्वक महसूस न करता। मगर जहां तक तुम्हारा सवाल है, मैं जानता हूँ कि तुम जल भुनकर कोयला हो जाते, चाहे उसे उस वक्त कुछ भी न कहते।''[4]

भारतीय समाज में विवाह से पहले और विवाह के बाद के सम्बन्ध में बड़ा अन्तर हैं। विवाह के बाद पति–पत्नी मानसिक रूप से भविष्य में आने वाली समस्याओं के लिए खुद को तैयार कर लेता है। जीवन में आने वाली परिस्थितियां अन्तर्द्वन्द्व का जाल बुन देती है। छोटी–छोटी बातें कई बार बड़ी–बड़ी विपतियां खड़ी कर देती है। उसके कार्यो का मूल्यांकन पति की तुष्टि पर आश्रित था। समानता के अधिकार से वचिंत रखा गया। स्त्री अधिकार–जगत में दीन रहकर भी कर्तव्य संसार में बहुत अमीर थी। दाम्पव्य बन्धनों में उनका कोई मत न मानकर, भेड़ बकरियों की भांति क्रय–विक्रय किया जाता था। विवाह से पहले स्त्री–पुरूष स्वतन्त्र विचारधारा के धनी होते है। विवाह के बाद दम्पति एक अटूट रिश्ते में बंध जाते हैं। वे परम्परा, रिवाज, मर्यादा, संस्कार आदि बंधनों में बंधकर एक दूसरे को सम्मान देते हैं। पत्नी विवाह के बाद एकात्मय अनुभव करती है, नारी मनोविज्ञान पर प्रकाश डालते हुए अपनी दार्शानिकता प्रकट करते हुए लिखते है–

''एकात्मय की भावना शारीरिक संपर्क के बाद जन्म लेती है''[5]

सन् 1850 के बाद में समाज में नारी मीमंसा प्रकट करते हुए भारतेन्दू ने अपने साहित्य के माध्यम से लिखा कि समाज के शासक वर्ग, माध्यम वर्ग तथा निम्न वर्ग– तीनों ही वर्गों में विलासिता चरम सीमा पर थी । शासक वर्ग में यह शासकों की कुत्सित व कामुक प्रवृत्ति से फल फूल रही थी । माध्यम वर्ग में उच्च वर्ग के अंधानुकरण के कारण इसका प्रसार था तो निम्न सामाजिक वर्गों में यह मजबूरी तथा जरूरत के कारण फैल रही थी। एक ओर हिन्दू धर्म के ठेकेदारों ने विधवा विवाह निषेध कर दिया था । दूसरी ओर अंग्रेज सरकार की लूट खसोट की प्रवृत्ति के कारण समाज में गरीबी बढ़ती ही जा रही थी। भारतेंदुकालीन

समाज में वेश्यावृत्ति चरम सीमा पर थी । समाज में वेश्याओं का प्रभाव इतना बढ़ गया था कि लोग अपनी विवाहिता स्त्री तथा बच्चों की तरफ ध्यान न देकर वेश्याओं की पूजा करते थे। भारतेन्दु जी अपने नाटक 'प्रेम योगिनी' में लिखते

"घर की जोरू लड़के भूखे बने दास औ दासी।
दाल की मंडी रंडी पूजै मानो इनकी मासी" ।।[6]

तत्कालीन समाज में वेश्यावृत्ति के अनेक उदाहरण भारतेंदुकालीन साहित्यकारों की रचनाओं में मिलते हैं । स्वयं भारतेंदु जी के नाटकों में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं, जिनसे तत्कालीन समाज में फैली वेश्यावृत्ति का सहज ही अनुमान हो जाता है । ऐसा ही एक उदाहरण उनके नाटक प्रेम जोगिनी से प्रस्तुत है: –

''जहाँ अनेक रंगों के कपड़े पहने सोरहो सिंगार बत्तीसो अभरन सजे पान खाए मिस्सी की धड़ी जमाए जोबन मदमाती झलझमाती हुई बारबिलासिनी देवदर्शन वैद्य ज्योतिषी गुणी–गृहगमन जार मिलन गानश्रावण उपवनभ्रमण इत्यादि अनेक बहानों से राजपथ में इधर–उधर झूमती घूमती नैनों के पटे फेरती बिचारे दीन पुरुषों को ठगती फिरती हैं और कहाँ तक कहैं काशी काशी ही है। काशी सी नगरी त्रौलोक्य में दूसरी नहीं है। आप देखिएगा तभी जानिएगा बहुत कहना व्यर्थ है.।''.[7]

भारतेंदु युग ऐसा समय था, जब भारत की अधिकांश जनताभयंकर गरीबी, बेकारी, लाचारी और विदेशी शासकों के अपमानजनक व्यवहार से जूझ रही थी। अस्तित्व का संकट मुँह बाए खड़ा था। नैतिक मूल्य गौण हो गए थे। ऐसे परिदृश्य में सम्पन्न वर्गों के अधेड़ और बूढ़े निर्धन घरों से अल्पवयस्क कन्याओं के माता–पिता को धन देकर विवाह कर लेते थे। तत्कालीन कवियों नें इस अत्याचार को देखा। और न केवल देखा, बल्कि अपनी रचनाओं के माध्यम से इस कुप्रथा का विरोध भी किया। भारतेन्दु का विचार है कि जब एक ही सम्प्रदाय के लोग परस्पर इतनी छुआ–छूत रखते है तो फिर अलग–अलग वर्ग अथवा जाति रखने वाले व्यक्ति एक–दूसरे से कितनी नफरत करते होंगे इनकी सहज ही कल्पना की जा सकती है।

दुष्यन्त कुमार त्यागी जी ने भी भारतेन्दू की भॉति समाज को विकसित बनाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। नारी के विविध रूपों को व्याख्या करते हुए वे इस बात का समर्थन करते है कि पुरूष और स्त्री एक सिक्के के दो पहलू है। जैसे एक पहलू के बिना दूसरा अधूरा है, उसी प्रकार स्त्री के बिना पुरूष और पुरूष के बिना स्त्री अधूरी है। या फिर यू कह सकते है कि पुरूष और स्त्री जीवन रूपी गाड़ी के दो पहिए है। जैसे गाड़ी एक पहिए के अभाव में चल नहीं सकती, उसी प्रकार स्त्री पुरूष के बिना और पुरूष स्त्री के बिना जीवन रूपी गाड़ी नहीं चला सकता। दुष्यंत जी ने अपने साहित्य में पुरूष और स्त्री दोनों को बराबर का सम्मान दिया है। उन्होंने स्पष्ट किया है कि पुरूष और परिवारिक सम्बन्धों को निभाने के लिए कड़ी मेहनत करते है। पुरूष जहाँ एक पिता, भाई, बेटा की भूमिका सहजता से निभाता है तो वहीं

स्त्री माँ, बहन, बेटी, की भूमिका त्याग के साथ निभाती है। पुरूष और स्त्री के लिए पति–पत्नी के रूप में दायित्व निभाना अत्यन्त कठिन होता है। पति–पत्नी के एक–दूसरे के साथ विश्वास के कमजोर धागे से बंधे होते है। यह विश्वास रूपी धागा टूटने पर जुड़ता नहीं बल्कि गांठ डाल देता है। यह एक ऐसा रिश्ता है जो एक–दूसरे को सम्मान देने के लिए किसी भी हद तक गुजर सकता है। कवि ने अपने उपन्यास 'एक कंठ विषपायी' में पत्नी द्वारा पति को सम्मान न मिलने पर यज्ञ में भस्म होना और पति द्वारा पत्नी प्रेम के कारण पत्नी की लाश को कई दिनों तक उठाए फिरना इसी बात का प्रमाण है जैसे–वारिणी द्वारा अपनी पति दक्ष को कहना :–

''पत्नी का मान नाथ!
पतियों की एक सहज आंकाक्षा होती हैं,
आप तनिक बतलाएं
मेरे संग अगर कहीं इसी तरह हो जाए
तो क्या तुम आत्मा पर
पर्वत–सा भार वहन कर लोगे
मेरा अपमान सहन कर लोगे?''[8]

कवि दुष्यन्त जी का विचार है कि स्त्री अपने पति की मर्यादा में ही अपनी मर्यादा समझती है। भारतीय इतिहास भी इस बात का गवाह है क्योंकि रानी सावित्री ने यमराज से अपने पति सत्यवान को छीन लिया था। पत्नी सदैव पति के सम्मान में अपना सम्मान समझती है। उन्होंने अपनी कृति में लिखा–

''पत्नी की मर्यादा
पति की मर्यादा से होती है
''मेरा घर है यह,
मेरा क्या,
मैं तो प्रजा में खड़ी होकर भी
दर्शक की तरह देखूँ तो
मेरी मर्यादा नहीं घटती
पर मेरे महादेव शंकर का स्थान
वहाँ, सर्वोपरि आसन के निकट रहे।''[9]

भारतेन्दु जी जन्म–पत्री के आधार पर विवाह करने का निषेध करते है। वे स्त्री और पुरुष दोनों को अपना जीवन साथी चुनने में स्वतन्त्रता देने के पक्षपाती थे। ऐसा न करने पर स्त्री और पुरुष दोनों ही आजीवन दुःखी रहेंगे। मन न मिलने पर भी केवल जन्मपत्री मिलाकर विवाह कर देने से जहाँ एक तरफ स्त्री कुमार्गगामिनी हो जाती है और जन्म भर सुख नहीं भोग पाती वहीं दूसरी ओर पुरुष भी असन्तोष के कारण विजयी हो जाएगा। घर में दिन–रात कलह रहेगी और स्वप्न में भी शान्ति नहीं मिलेगी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने सती–प्रताप नाटक की रचना करने का जो प्रयास किया यद्यपि दुर्भाग्य से वह पूरा नहीं हो पाया, पर इस नाटक के जो चार दृश्य भारतेन्दु लिख पाये उनमें पतिव्रता स्त्री के चरित्र को बहुत ऊँचा उठाया गया है और साथ ही विवाहित स्त्री का अपने पति के प्रति कर्तव्य भी समझाने की चेष्टा की गयी है। पतिव्रता नारी का गुणगान करते हुए भारतेन्दु कहते हैं–

'' जग में पतिव्रत सम नहि आन।
नारि हेतु कोउ धर्म न दूजो जग में यासु समान।
अनसूया सीता सावित्री इनके चरित प्रमान।
पति–देवता तीय जगधन–धन गावत वेद–पुरान।
धन्य देस कुल जहं निबसत नारी सती सुजान
धन्य समय सब जन्म लेत ये धन्य ब्याह असथान।
सब समर्थ पतिबरता मारी इन सम और न आन
याही ते स्वर्गहु में इनको करत सबै गुन गान।'' [10]

भारतेन्दु भारतीय नारी को एक पतिव्रता पत्नी ही नहीं अपितु आदर्श माता भी बनाना चाहते थे। इसीलिए भारतेन्दु अपनी 'बाला–बोधिनी' नामक स्त्रियोपयोगी पत्रिका के जुलाई १८७५ ई० के अंक में प्रकाशित अपने एक लेख में भारतीय नारी को संतान के प्रति एवं पति के प्रति पत्नी का कर्तव्य बतलाते हुए सावित्री के मुख से भारतेन्दु कहलवाते हैं : –

''पत्नी का सुख एकमात्र पति की सेवा है। जिस बात में प्रियतम की रुचि उसी में सहधर्मिणी की रुचि । [11]

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद नारी की स्थिति में कुछ सुधार होने लग गया। नारी को ध्यान में रखते हुए कई कानून बनाए गए। कुछ कानून केवल नाम के रह गए। दुष्यन्त जी ने अपने साहित्य में नारी को त्याग की मूर्ति के रूप में स्वीकार किया है। वह माँ, बेटी, बहन आदि की भूमिका निभा कर समाज का विकास करती है। हांलाकि शुरूआत के दौर में दुष्यन्त जी का विचार था कि नारी केवल शृंगार के प्रति आकर्षित है। लेकिन बाद में जाना कि वह काव्य में भी रुचि लेती है। वे अपनी कृत्ति 'प्रॉमिज पक्का' में लिखते है–

''मेरा तो सदैव से निश्चित मत रहा है कि नारी में श्रृंगार के अतिरिक्त काव्य के अन्य रसों की भावुक शक्ति ही नहीं होती।''[12]

समाज में नारी का यर्थाथ चित्रण प्रस्तुत करते हुए दुष्यन्त जी लिखते है कि हमारी संस्कृति और सभ्यता दोनों ने नारी को कर्त्तव्य से विमूख नहीं होने दिया। इतिहास इस बात का साक्षी है कि सावित्री, लक्ष्मीबाई, मीरा, पन्ना, अहल्या जैसे नारियों ने परम्परा एंव कर्त्तव्य के साथ जीवन को सफल किया है। अपनी मर्यादा की रक्षा के लिए उन्होनें अपना बलिदान दिया। 'एककंठ विषपायीं' नामक नाटक में त्यागी जी ने विष्णु के माध्यम से स्पष्ट किया है :–

''पति के प्रति मानहानिपूर्ण
अशुभ वाक्यों के पाप से निवृति हेतु
सहज योग धारण कर
नाभि चक्र से सयत्न
प्राण अपान वायु को समान कर
उदान को उठाकर
तन का लौकिक प्रकार भस्म कर दिया था''[13]

भारतेंदु युग के लोक साहित्य में नारी संबंधी सामाजिक बोध पूरी ईमानदारी से व्यक्त हुआ है। नारी जीवन से जुड़ी अनेक विसंगतियों को लोक शैली के माध्यम से इस काल खंड के साहित्यकारों ने उभारा। बाल विवाह, विधवा विवाह, बाला–वृद्ध विवाह, नारी के वेश्या स्वरूप पर तीखे कटाक्ष इस युग के साहित्य में दिखाई पड़ते हैं। इसके पूर्व रीतिकालीन साहित्य में नारी जहाँ मात्र उपभोग की वस्तु समझी जाती थी, भारतेंदु युग में उसे पुरुषों के बराबर प्रतिष्ठा देने का आग्रह झलकता है।

भारतेन्दू युग में नारी शिक्षा के प्रति माता पिता की उदासीनता के कारण, स्त्री प्रायः अशिक्षित ही रह जाती थी। यदि कोई लड़की पढ़ भी जाती थी तो उसके विवाह में बहुत परेशानियाँ आती थी। यही कारण था कि माता–पिता लड़की को पढ़ाते लिखाते ही नहीं थे। परिणाम स्वरूप उसका मानसिक व बौद्धिक विकास अवरुद्ध हो जाता था। परिवार तथा समाज में सम्मानजनक स्थिति न होने के कारण भारतेन्दु काल में नारी विभिन्न सामाजिक अवसरों एवं उपलब्धियों से वंचित रही। यहाँ तक कि परिवार उसे शिक्षा देना भी जरूरी नहीं समझता था। तर्क यह दिया जाता था कि यदि स्त्री लिख पढ़ गई तो उसे 'योग्य' वर नहीं मिल सकेगा। शायद तभी भारतेंदु जी ने स्त्री शिक्षा को ध्यान में रखते हुए स्त्रियों के लिए 'बालबोधिनी' नाम की पत्रिका का 1874 में प्रकाशन आरंभ किया। इनमें 'हरिश्चंद्र चंद्रिका',' बाल बोधिनी' तथा 'स्त्रीजन की

प्यारी' पत्रिकाएँ नारी के सामाजिक परिवेश से जुड़ी थीं। हमारे समाज में यह बात प्रसिद्ध है कि हर एक सफल आदमी के पीछे औरत का हाथ होता है। प्राचीन इतिहास उठाकर देखिए, वह नारियों की पावन गाथाओं से भरा पड़ा है। उसके पृष्ठ–पृष्ठ पर उनके वीरोचित कार्यो का उल्लेख है। दुष्यन्त जी ने अपनी प्रसिद्ध कविता 'पत्नी के प्रति' में कर्त्तव्य परायण पत्नी को सम्बोधन किया है। वह उसकी प्रशंसा करता हुआ लिखता है–

''धन्य हो गया तुमको पाकर जीवन मेरा

संजीवन की बूंदे पाई जीवन और मरण ने

मंजिल की परछाई हारे–थके चरण ने''[14]

कवि का मानना है कि आज शहरी व ग्रामीण दोनों ही क्षेत्रों में पाश्चात्य सांस्कृतिक मूल्यों के अनुकरण की होड सी लगी है। हम पाश्चात्य संस्कृति की चकाचौंध में अपनी संस्कृति की गरिमा को बिसरा बैठे है। आज नारी असंयमित होकर संयम से जीवन जीना भी उचित नहीं मानती और सुःख भोगी बनकर दुःख से दूर होने का रास्ता ढूंढ़ती है। भौतिक जीवन के हितार्थ आध्यात्मिक जीवन को तिलाजंलि दे बैठा है। न जाने क्यों? आज उसे रहन–सहन, खान–पान, रीति–रिवाज सब कुछ नीरस लगने लगे है। वह पश्चिम की अंधी नकल में अपनी अकल भी खफा बैठी है। भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता को नकारते हुए पाश्चात्य की चकाचौंध में फंस चुकी है, उसमें नैतिकता, संस्कार, परम्पराओं, कर्तव्य आदि गायब होते जा रहे है। एकांकी परिवार के बढ़ते चलन ने सयुंक्त परिवार को गहरी चोट दी है। वर्तमान में नारी किसी भी नजर से पुरुष से पीछे नहीं रहना चाहती।

दुष्यन्त जी नारी पर लिखते हुए कहते है कि नैतिक मूल्य के पतन से आज नारी भोगवादी बन गई है। वह अपनी मौज–मस्ती के लिए चरित्र को दर किनार कर रही है। आज पुरुष समाज भी उसे उपेक्षित दृष्टि से देखता है। वह उसे वासना–पूर्ति का साधन मानता है। आज सिनेमा ने भी नारी की विचार धारा में परिवर्तन किया। दुष्यन्त जी अपने लेख'' राष्ट्रोन्नति में सबसे बड़ी बाधा सिनेमा'' में लिखते है–

''इन फिल्म–निर्माताओं ने नारी का इतना नग्न प्रदर्शन कराया है कि भाडू भी वेश्याओं का नहीं करा सकता। वक्षस्थल को एक हाथ उभरा हुआ और जांघ को नग्न दिखाए बिना तो इनका काम चलता ही नहीं।'' [15]

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि भारतेंदु और दुष्यंत कुमार ने अपने साहित्य में नारी के विविध रूपों को परिभाषित किया है। उन्होंने समाज में नारी को ऊंचा स्थान दिलाने के लिए भरसक प्रयास किया। समाज में नारी की यथार्थ स्थिति का चित्रण करते हुए ने केवल विविध समस्याओं को उठाया बल्कि उन समस्याओं का समाधान करने के लिए अपने साहित्यिक पत्रों के माध्यम से मुख से कहलवाया। भारतेंदु

जी ने अनेक पत्रिकाएं निकाल जिनके नाम नारी से संबंधित है तो वही दुष्यंत कुमार जी ने अपनी गजलों, उपन्यासों, कहानियो, कविताओं और गीतों के माध्यम से नारी के प्रति प्रेम करते हुए निष्ठा आदि को सजीवता के साथ चित्रित किया। एक तरफ जहां भारतेंदु जी ने अंग्रेजी शासन काल में नारी की स्थिति शिक्षा के क्षेत्र में, समाज, साहित्य, धर्म, सांस्कृतिक, राजनीतिक आदि विविध क्षेत्रों में नारी की स्थिति को स्पष्ट किया तो वही भारतेंदु जी ने स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी नारी की विविध समस्याओं को अपनी लेखनी का माध्यम बनाया। अतः दोनों ही साहित्यकार ने अपनी लेखन कार्य को निष्ठा के साथ करते हुए नारी के प्रति दायित्व को बखूभी निभाया।

सन्दर्भ–सूची

[1] भारतेंदु समग्र : भारत दुर्दशा, पृष्ठ 462
[2] भारतेंदु समग्र : अंधेर नगरी, पृष्ठ 534
[3] विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार रचनावली, तीन पृ.स.–377
[4] विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार रचनावली, तीन पृ.स.–355
[5] विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार रचनावली, तीन पृ.स.–354
[6] भारतेंदु समग्र : प्रेम जोगिनी , पृष्ठ 411
[7] भारतेंदु समग्र : प्रेमजोगिनी , पृष्ठ 412
[8] विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार रचनावली, दो पृ.स.–44
[9] विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार रचनावली, दो पृ.स.–46
[10] भारतेन्दु–ग्रन्थावली, पहला भाग, पृ० 676
[11] भारतेन्दु–ग्रन्थावली, पहला भाग, पृ० 688
[12] विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार रचनावली, चार पृ.स.–214
[13] विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार रचनावली, दो पृ.स.–57
[14] विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार रचनावली, एक पृ.स.–222
[15] विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार रचनावली, चार पृ.स.–159